■ प्रयोग

बुनियादी तालीम में मेरा सफर

दयालचन्द्र सोनी

डॉ. जाकिर हुसैन की जन्म शताब्दी मनाने के उपलक्ष्य में 7 मार्च, 1968 को जामिया मिलिया इस्लामिया, दिल्ली में एक विचार गोष्ठी आयोजित की गई, जिसका विषय ''आज के समय में बुनियादी तालीम की प्रासंगिकता है या नहीं'' था। इस गोष्ठी में स्व. दयाल चंद्र सोनी को विद्या भवन बुनियादी मदरसे में उनके द्वारा किए काम व प्रयोग के बारे में ''बुनियादी शिक्षा में मेरे प्रयोग'' विषय पर एक निबंधवाचन के लिए निमंत्रण दिया गया। दयाल चंद्र सोनी ने इस विषय के शीर्षक में थोड़ा परिवर्तन करते हुए ''बुनियादी शिक्षा में मेरा सफर'' पर एक दिलचस्प निबंध लिखा था। इस निबंध में बुनियादी तालीम के विभिन्न पहलुओं के संदर्भ में बनी उनकी समझ को उन्होंने बहुत ही रोचक ढंग से प्रस्तुत किया था। इस निबंध का शुरुआती हिस्सा यहां दिया जा रहा है। इसका शेष हिस्सा अगले अंक में।

मैं इस बात को अपना परम सौभाग्य मानता हूं कि परम आदरणीय स्व. डॉ. जाकिर हुसैन की जन्मशताब्दी पर ''बुनियादी तालीम की प्रासंगिकता'' पर विचारगोष्ठी आयोजित की गई तथा इस गोष्ठी में अपने अनुभव प्रस्तुत करने के लिए मुझे भी एक मौका दिया गया।

मूलरूप से मुझे अपने इस लेख के लिए जो शीर्षक दिया गया, वह है, ''बुनियादी शिक्षा में मेरे प्रयोग''। पर मेरी प्रार्थना आप सब से यह है कि मुझे थोड़ी व्यापक दृष्टि से बोलने की इजाजत दी जाए और मेरे इस लेख का शीर्षक ''बुनियादी शिक्षा में मेरा सफर'' रखने दिया जाए। बुनियादी शिक्षा में मैंने जो प्रयोग किए वे इस लेख में आएंगे जरूर पर उनका वर्णन अलग–अलग प्रयोगों में नहीं करके एक सिलसिलेवार सफर नामे के रूप में करना बेहतर होगा। बुनियादी शिक्षा में मैंने जो काम किया उसमें केवल प्रयोगवाद या एक्स्पेरिमेंट करके परखने की ही भावना नहीं थी, बल्कि जो कुछ भी मैंने किया, चाहे वह एक प्रयोग ही क्यों न हो, उसके पीछे एक आस्था तथा एक समर्पण भी रहा। यानी बुनियादी शिक्षा से मेरा जुड़ाव केवल बौद्धिक नहीं रहा बल्कि उसमें भावना भी जुड़ गई। इसलिए मैं अपने लेख या भाषण का विषय ''बुनियादी तालीम में मेरा सफर'' रखने की अनुमति मांगता हूं। मुझे आशा है कि आप की अनुमति है और इसी हिसाब से मैं आगे बोलूंगा।

इसके पहले कि मैं आगे बोलूं मैं आपसे एक मिनट का एक ''रीसेस'' या अवकाश चाहूंगा ताकि मैं अपनी एक यादगार से श्रद्धेय जाकिर साहब को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करने के बाद आगे बोलूं। यह बात बुनियादी तालीम की मेरी कहानी से अलग जरूर है, पर जब मैं इस शताब्दी समारोह में आ ही गया हूं तो एक मिनट मुझे थोड़ी अलग लगनेवाली बात की भी इजाजत दीजिए। आशा है इजाजत है।

बात यह है कि सन् 1946 में जब जामिया मिलिया



की रजत जयंती थी तो विद्या भवन उदयपुर की तरफ से एक तो श्री इस्माइल साहब और एक मैं उस उत्सव में भेजे गए थे। इस्माइल साहब तो अलग से गए थे। पर मैं जब ट्रेन में रेवाड़ी स्टेशन पहुंचा तो समाचार मिला कि दिल्ली में हिन्दू मुस्लिम दंगे भड़क गए हैं। मैंने डर के कारण रेवाड़ी से ही उदयपुर लौटने का विचार किया। मेरी बात एक मुस्लिम युवक ने सुनी तो वह बोला कि आप डरो मत। दिल्ली स्टेशन पर मेरा बड़ा भाई रहता है। मैं आज रात को आपको उसके यहां रखूंगा और सुबह आपको ओखला की बस में बैठा दूंगा। मैंने उस युवक का विश्वास किया और मैं सुरक्षित जामिया पहुंचा। यहां रजत जयंती के जलसे में मौलाना आजाद, जवाहर लाल नेहरू, चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य, सरदार पटेल तथा जिन्ना साहब भी आए और एक मंच पर बैठे। नवाब भोपाल अध्यक्ष थे। उस समय आजादी के पहले की अंतरिम सरकार थी जिसमें मुस्लिम लीग और कांग्रेस दोनों शामिल थीं। देश में चारों ओर दंगे फसाद का माहौल था। इस मंच पर डॉ. जाकिर हुसैन ने जो मार्मिक भाषण देश की दशा पर दिया उससे सभी श्रोताओं का दिल हिल गया। उस भाषण का सार मैं आज इन पंक्तियों में दुहराना चाहता हूं–

''क्यों बंट रहे हैं हम हिन्दू और, मुसलमां में?

इंसान बने रहना, काफी नहीं है क्या?''

श्रद्धेय जाकिर साहब को अपनी श्रद्धांजलि इस प्रकार अर्पित करके अब मैं अपने मूल विषय पर आ जाता हूं।

महात्मा गांधी ने तो बुनियादी तालीम का विचार सन् 1936 में ही दे दिया था, लेकिन डॉ. मोहनसिंह मेहता द्वारा उदयपुर में स्थापित विद्या भवन संस्था, (जिसमें मैंने हाई स्कूल तक की तालीम पाई थी और सन् 1936 में हाई स्कूल पास करते ही बिना किसी भी प्रकार की टीचर ट्रेनिंग लिए मैं अपनी 17 वर्ष की अवस्था में ही टीचर नियुक्त कर दिया गया था।) ने सन् 1941 में एक बुनियादी मदरसा उदयपुर शहर से कुछ दूरी पर ग्रामवासियों के लिए चलाने का विचार किया। उस वक्त विद्या भवन में यह सवाल उठा कि बुनियादी शिक्षा के इस नए विद्यालय का काम किसको सौंपा जाए। तो राम जाने, विद्या भवन ने मुझ बेचारे में ऐसा क्या देखा कि यह काम मुझे सुपुर्द कर दिया गया। खैर, 23 अप्रैल 1941 में उस नए विद्यालय यानी विद्या भवन बुनियादी मदरसे का उद्घाटन हुआ और यह उद्घाटन श्रद्धेय जाकिर साहब के ही कर कमलों से कराया गया।

इस उद्घाटन के बाद दो–ढाई महीनों तक मैंने बिना किसी ट्रेनिंग के, केवल साहित्य पढ़कर उसके सहारे बुनियादी शिक्षा का काम किया। इन

दिनों मैंने बुनियादी तालीम को यों समझा कि मेरे पिताजी की स्वर्णकारी की दुकान में जब मैं काम सीखता था और पिताजी की मदद करता था, तब मेरे पिताजी मुझ से काम तो कराते थे, औजारों का तथा रसायनों का उपयोग तो सिखाते थे, पर स्वर्णकारी के कार्य की मार्फत मुझे भूगर्भ विद्या, इतिहास, भूगोल, विज्ञान, रसायन शास्त्र, गणित आदि का जो बौद्धिक ज्ञान दिया जा सकता वह ज्ञान नहीं देते थे। तो बुनियादी शिक्षा की पहली तस्वीर जो मैंने बनाई वह यह थी कि यह तालीम ऐसी है जो हुनर या काम को सिखाती है पर साथ साथ उस हुनर या काम से जोड़–जोड़कर कर प्रासंगिक बौद्धिक ज्ञान भी देती है। इस तसव्वुर या संकल्पना पर मैंने बिना किसी ट्रेनिंग के अपना काम शुरू किया। पर दो–तीन माह बाद ही विद्या भवन ने जुलाई 1941 में जामिया मिलिया के इस ''उस्तादों के मदरसे'' में मुझे बुनियादी तालीम की ट्रेनिंग प्राप्त करने हेतु पूरे सालभर के लिए भेज दिया। जनाब सईद साहब प्रिसिंपल थे और जनाब सलामतुल्लाह साहब खास उस्तादों के उस्ताद थे। और भी गुरुजन थे जो हमें बड़ी मोहब्बत से हुनर का काम भी सिखाते थे और हुसूले तालीम के उसूल समझाते थे। तालीम का माध्यम उर्दू जबान थी। ब्लैक बोर्ड पर नोट्स उर्दू लिपि में लिखे जाते थे। सौभाग्य से मैं उर्दू लिपि जानता था। तो मुझे दिक्कत नहीं हुई और सालभर में उर्दूजबान से मेरा खासा अच्छा नश्वोनमां (अभ्यास) हो गया। हालांकि अब उतना अभ्यास नहीं रहा। पर उर्दू से मुझे बहुत फायदा हुआ। अब एक याद को ताजा करने के लिए क्षमा करें। हमारे साथ ट्रेनिंग लेनेवाले एक साथी थे जनाब रशीद नोमानी। उनकी जबान पर एक लाइन बार–बार गुनगुनाई जाती थी। ''काहे न गाता रे पंछी बावरिया?'' एक दफा हम साथियों के बीच उन्होंने फिर यही लाईन गुनगुनाई तो मैंने जवाब दिया '' क्योंकि न सुनता है पंछी थावरिया।'' थावरिया साहब उस्तादों के मदरसे में एक बूढ़े हरिजन थे जो बड़ी मुश्किल से सुनते थे।

मैं बुनियादी शिक्षा की ट्रेनिंग लेने तो आया, लेकिन खादी नहीं पहनता था। तो इस उस्तादों के मदरसे में ही मुझे खादी पहनने की प्रेरेणा मिली। नतीजतन न केवल मैं आज तक खुद खादी पहन रहा हूं बल्कि मेरी श्रीमती भी लगातार खादी पहनती जा रही हैं। हमें खादी पहनने का आज तक कोई पछतावा नहीं हुआ।

ट्रेनिंग लेनेवाले हम लोगों का सबसे बड़ा सौभाग्य यह था कि दस दिनों तक एक पीरियड में हमें स्वयं जाकिर साहब ने पढ़ाया यानी उन्होंने हमारी क्लास ली। उन्होंने हमें बुनियादी तालीम का बुनियादी फलसफा (दर्शन) समझाया तथा उसके उसूल बताए। हमें उन्होंने बताया कि जैसे खुराक के बारे में या कपड़े के बारे में सोचा जाता है कि एक मनुष्य की मिनिमम जरूरत कितनी खुराक की या कितने कपड़े की हो सकती है, वैसे ही एक स्वाधीन तथा लोकतांत्रिक देश की मिनिमम तालीमी खुराक उसके हर नागरिक के लिए कैसी तथा कितनी चाहिए इसका जवाब है बुनियादी शिक्षा। जाकिर साहब से यह बात समझने के बाद हमने उनसे अपनी कक्षा में दो सवाल किए थे जिनका उन्होंने बहुत माकूल जवाब दिया था।

हमारा पहला सवाल था कि बुनियादी तालीम में बच्चों को हाथ का हुनर क्यों सिखाया जाता है। इसकी जरूरत क्या है? इसका जवाब जाकिर साहब ने यह दिया था कि सात से चौदह साल की उम्र के विद्यार्थियों की फितरत (स्वभाव) में है कि वे अपने हाथों से काम लेना चाहते हैं, उनसे कुछ बनाना बिगाड़ना चाहते हैं। तालीम का उसूल यह है कि तालिबेइल्मों या विद्यार्थियों की नैसर्गिक रुचि या उनकी फितरती दिलचस्पी के काम को

उनकी तालीम का मरकज (माध्यम) बनाया जाए। तो इस उम्र के बच्चों की नैसर्गिक रुचि को बीच में रखकर ही बुनियादी तालीम में हाथ के हुनर को तालीम का मरकज माना गया है। हाथ के काम से बच्चों को महरूम या वंचित कर देना तथा उनको लगातार किताबों में ही उलझाकर रखना तो बच्चों पर, यानी उनकी फितरत पर जुल्म या ज्यादती है। बच्चों पर होने वाली आज के स्कूलों की इस ज्यादती से बुनियादी तालीम बच्चों की रक्षा करेगी।

दूसरा सवाल, जो हमारी क्लास के साथियों ने जाकिर साहब से पूछा था, यह था कि बुनियादी तालीम ऐसा क्यों कहती है कि बच्चों के उद्यम या उनकी दस्तकारी से कुछ ठोस कमाई होनी चाहिए? क्या यह चाइल्ड लेबर एक्स्प्लायटेशन या बालश्रम का शोषण नहीं है जैसा कि बुनियादी शिक्षा के निंदक एवं आलोचक लोग लगातार शोर मचा रहे हैं? इस सवाल का जो जवाब जाकिर साहब ने दिया था बहुत ध्यान देने और याद रखने काबिल था। उन्होंने कहा कि जिस दस्तकारी या उद्यम को केवल खेल या मनोरंजन के लिए ही नहीं बल्कि तालीम हासिल करने के लिए करना है, उस काम में तरतीब तथा जिम्मेदारी की भावना लानी होगी। बच्चे मेहनत तो करें पर उससे कोई नफा या कमाई न हो तो मानना होगा कि मेहनत और कच्चे माल की बरबादी हुई, जिससे तालीम तो नहीं हो सकती। इसलिए बुनियादी तालीम में जो काम बच्चे करेंगे उससे नफा या कमाई होने को रोका तो नहीं जा सकता। ढंग से काम होगा तो कमाई को कैसे रोका जा सकेगा? हां, अगर उस कमाई या लाभ में बालकों के परिश्रम का शोषण रूपी पाप नजर आता हो, तो बच्चों के काम से होने वाली कमाई को हम समंदर में फेंक सकते हैं ताकि हमें ''चाइल्ड लेबर एक्सप्लायटेशन'' का पाप तथा अपयश नहीं झेलना पड़े। जिन बुद्धिजीवियों का निहित स्वार्थ मैकालेवादी शिक्षा प्रणाली से जुड़ा हुआ है और जिनको कोरी किताबी रटंत में तो बच्चों पर जुल्म नजर नहीं आता और जिन्हें हाथ के हुनर में बच्चों पर जुल्म और बेरहमी नजर आती है उनको जो जवाब डॉ. जाकिर हुसैन ने हमारी कक्षा में दिया था, उससे बेहतर जवाब दूसरा हो नहीं सकता।

खैर सन् 1942 की गर्मियों में अपनी ट्रेनिंग खत्म करके मैंने उस्तादों के मदरसे से विदा ली और मैं उदयपुर में अपने बुनियादी मदरसे में काम करने के लिए फिर से पहुंच गया। मेरे सामने काम बहुत ही मुश्किल था। स्कूल जरा एकांत में था। रात में भयावह भी हो जाता। स्कूल के लिए विद्यार्थियों को जुटाना एक भारी चुनौती थी। माता–पिता मुझे यों बोलते थे कि खेतीबाड़ी तथा मेहनत मशक्कत उनके घरों में भी मौजूद है अतः स्कूल में भी खेतीबाड़ी और सूत कताई से छुटकारा नहीं है, तो हम अपने बच्चों को स्कूल क्यों भेजें? स्कूल से चार–चार मील के दायरे में, मैं स्कूल के लिए बच्चे जुटाने के लिए लगातार फेरी लगाता था। इस बात को मैं समझाने का प्रयत्न करता था कि यह गांधीजी द्वारा नई निकाली गई तालीम ऐसी है जो आपके घर का, आपके गांव का तथा आपकी खेतीबाड़ी का सुधार करेगी और आपका बच्चा नौकरी का ही मोहताज नहीं बनेगा जैसा कि पहलेवाली शिक्षा से होता रहा है। फलस्वरूप धीरे–धीरे स्कूल में छात्रों की संख्या बढ़ने लगी। इधर पड़ोस की देशी रियासत डूंगरपुर के महारावल ने 15 भील विद्यार्थियों को इस कारण अपने स्कूल से निकाल दिया कि इन लड़कों ने भारत छोड़ो आंदोलन के एक जुलूस में भाग लिया था। तो ये 15 विद्यार्थी उदयपुर आकर मेरे स्कूल में भर्ती हुए। इनके लिए छात्रावास की व्यवस्था भी की गई। तो इस प्रकार मेरा बुनियादी मदरसा चल निकला।

बुनियादी शिक्षा के मूल सिद्धांत थे कि शिक्षा

मातृभाषा के माध्यम से दी जाए, शिक्षा के पाठ्यक्रम में लगभग आधा समय उत्पादक उद्यम को दिया जाए और विद्यार्थियों को जो कुछ भी जानकारी दी जाए या पढ़ाया जाए उसका समवाय, या रब्त या कॉरिलेशन विद्यार्थियों के बुनियादी उद्यम कार्य से किया जाए अथवा विद्यार्थियों के समाज से या विद्यार्थियों के स्थानीय भौतिक परिवेश से किया जाए। अंतिम सिद्धांत यह था कि विद्यार्थियों के उद्यम में बरबादी नहीं बल्कि उससे कमाई होनी चाहिए। तो यह काम काफी कठिन तथा नया था और मुझे जो साथी अध्यापकों के रूप में मिले थे वे तो औपचारिक शिक्षा से निकले हुए सामान्य शिक्षक थे। पर मेरा एक सौभाग्य यह था कि ये लोग लचीले थे, नई बात सीख सकते थे क्योंकि ये किसी भी प्रकार की टीचर ट्रेनिंग के कठोर, बेलोच और घमंडी बने हुए नहीं थे यानी ये लोग अनट्रेंड होने से नई बात सीखने की क्षमता एवं नम्रता रखते थे। मैंने इनको बुनियादी तालीम की प्रणाली में ढालने के लिए एक प्रयोग यह किया कि स्कूल में विद्यार्थियों के ठहरने के समय में तो एक घंटे की कटौती कर दी और उस घंटे में शिक्षकों को स्कूल में ही रोका। मैंने शिक्षकों से कहा कि आपको कल क्या पढ़ाना है और उसका समवाय या कॉरिलेशन उद्यम से या बच्चे के सामाजिक या प्राकृतिक परिवेश से कैसे होगा, इस पर सोचिए तथा कल जो कुछ तथा जैसे पढ़ाना है उसकी लिखित तैयारी कीजिए। तो एक घंटे तक हम सब शिक्षक एक ही कमरे में बैठ कर कल के शिक्षण की समवायी तैयारी करते और और अपनी कठिनाइयों पर एक–दूसरे से चर्चा करते। मुझे यह कहते हुए बहुत खुशी है कि इससे हमें बुनियादी शिक्षा की स्पिरिट अथवा उसका तत्व पकड़ने में बहुत आसानी हुई तथा अच्छी कामयाबी मिली। हमें यह बात समझ में आई कि बुनियादी शिक्षा कोई बिना पेंदे की हवाई शिक्षा नहीं है बल्कि उसका एक पेंदा है, इसकी एक जड़ है, उसका एक मूलाधार है। वह एक बाबुनियाद शिक्षा है, जिससे उसका बुनियादी शिक्षा का नाम सही है। इसके साथ ही हमें ऐसा भी लगा कि अगर शिक्षक लोग अपने स्कूल में ही मिलजुल कर अपने दैनिक शिक्षण पर सहचिंतन करें तथा पहले तैयारी करके बाद में विद्यार्थियों को पढ़ाएं, तो जिन विद्यालयों में वे छात्रों को शिक्षा देते हैं वे ही विद्यालय उनके प्रशिक्षण के विद्यालय भी बन सकते हैं और आज हमारे देश में प्रशिक्षण विद्यालयों की जो अलग व्यवस्था खड़ी हो गई है उसे गैरजरूरी मानकर खत्म किया जा सकता है।

इस प्रकार स्कूल के उद्यम की, स्थानीय सामाजिक परिवेश की तथा स्थानीय प्राकृतिक परिवेश की शिक्षात्मक संभावनाओं का हमें सहज दर्शन होने लगा। हमें लगा कि शिक्षा उद्यम में छिपी है, शिक्षा छात्र के सामाजिक एवं प्राकृतिक परिवेश में भी छिपी है और जरूरत इस बात की है कि हम इन संभावनाओं को देखने की दृष्टि पैदा करें। इस दृष्टि को पैदा करने में हमें लगा कि हम अपने शरीर श्रम से, अपने स्थानीय परिवेश में काफी सुधार कर सकते हैं। स्कूल से गांवों में पहुंचने के जो ग्रामीण मार्ग थे, खासकर बारिश में उनमें न केवल कीचड़ बहुत रहता था बल्कि कभी–कभी तो सौ पचास फीट की दूरी तक पूरे रास्ते में पानी भरा हुआ रहता था। तो स्कूल के विद्यार्थियों ने सामूहिक श्रमदान द्वारा इन रास्तों में लगभग तीन फीट चौडी ऊंची पगडंडी का निर्माण किया ताकि कीचड़ एवं भरे हुए पानी से बचकर ग्रामीण लोग आराम से अपने गांवों में आ जा सकें। हम समर्थ हैं, हम कुछ कर सकते हैं, सहयोग में शक्ति हैं। ऐसे संस्कार विद्यार्थियों में पड़ने लगे, जिनको गांववालों ने भी समझा तथा सराहा। बच्चों का सामूहिक तथा सहयोगी श्रम जब खेती बाड़ी में भी लगता और ग्रामसेवा के श्रमदानों में भी लगता, तो विद्यार्थियों में एक दूसरे के प्रति मित्रता एवं इज्जत

बढ़ती। वे मानने लगे कि दूसरा विद्यार्थी मेरे लिए खतरनाक प्रतियोगी या कंपीटीटर नहीं है बल्कि वह हमारा सहारा है, साथी है, सहयोगी है। हम देखते हैं कि मैकालेवादी शिक्षा पूरी की पूरी, एड़ी से चोटी तक प्रतियोगिता के भय से बच्चों को ग्रस्त तथा त्रस्त रखती है। उसके खिलाफ मेरे स्कूल की बुनियादी शिक्षा थी जो विद्यार्थियों के बीच स्नेह, मैत्री, सहयोग, एवं एक आश्वासन का संबंध स्थापित करती थी। ग्रामवासियों को हमारे स्कूल की इन श्रमसेवाओं से आवागमन की अपनी कठिनाइयों में राहत मिलती थी। नतीजा यह होता कि गांव के लोग शिक्षा तथा स्कूल को एक बिलकुल नए रूप में देखने लगे। उनको हमारा स्कूल अच्छा लगने लगा और उनके सामने यह रहस्य खुलने लगा कि यदि मनुष्य अथवा जनता सहयोगपूर्वक स्वैच्छिक श्रमदान करें तो उनकी समस्याएं हल हो सकती हैं। इस अनुभव से हमें लगा कि बुनियादी शिक्षा प्रतियोगी शिक्षा के बजाए सहयोगी शिक्षा का एक नया विकल्प हैं।

हम अपने स्कूल में अपनी विभिन्न कक्षाओं का पाठ्यक्रम क्या रखें तथा विद्यार्थियों को कौनसी टेक्स्ट बुक या पाठ्यपुस्तक पढ़ाएं, इसकी हमें पूरी स्वतंत्रता या स्वायत्तता हमारे राजकीय शिक्षा विभाग की तरफ से मिली हुई थी। सरकारी स्कूल इंस्पेक्टर हमारे स्कूल में एक–दो बार आए जरूर पर अंत में वह यह बोले कि आपके स्कूल का इंस्पेक्शन मेरे बस की बात नहीं है। इससे प्रोत्साहित होकर हम लोगों ने अपने स्कूल के लिए सभी विषयों का अपना ही मौलिक पाठ्यक्रम बनाना शुरू किया। हमारे स्कूल के अहाते के बीच में एक बड़ी नहर थी। हमारे पड़ोस में कुछ मंदिर थे। कुछ कृत्रिम झीलें थीं। हमने अपने पाठ्यक्रम में अपने पड़ोस के मंदिरों, तालाबों, गांवों, पहाड़ों, उद्योग–धंघों को स्थान दिया। हमारा स्थानीय सामाजिक एवं प्राकृतिक परिवेश हमारे अध्ययन का मूल एवं प्रमुख विषय है, ऐसा मानकर हमने अपना पाठ्यक्रम विकसित किया। आज हमारे स्कूलों में जो पाठ्यक्रम होता है, वह सारे राज्यप्रदेश के लिए बिल्कुल एक समान होता है। उस पाठ्यक्रम में देश विदेश के बड़े–बड़े पहाड़ों, बड़े–बड़े शहरों, बड़ी–बड़ी नदियों, बड़े–बड़े जंगलों, बड़ी–बड़ी खानों की जानकारी को तो स्थान होगा, पर स्कूल के पड़ोस में जो पहाड़ है, नदी है, गांव, शहर या झीलें हैं या जंगल है या खानें हैं, उनकी जानकारी प्राप्त करने का कोई प्रावधान हमारे आज के स्कूलों के पाठ्यक्रम में नहीं होता। नतीजा यह होता है कि विद्यार्थी अपने आसपास के सामाजिक, आर्थिक, प्राकृतिक परिवेश की दृष्टि से बिल्कुल कटा हुआ, अज्ञानी, अजनबी तथा तटस्थ हो जाता है। उसे लगता है कि वह अपने परिवेश में जीने तथा खपने के लिए तालीम नहीं पा रहा है बल्कि अपने परिवेश से एक्स्पोर्ट या निर्यातित होने के लिए तालीम पा रहा है। तो जब हमने अपने स्कूल के परिवेश से जुड़ा हुआ पाठ्यक्रम अपने स्कूल के लिए खुद ही विकसित किया, तो हमने बुनियादी शिक्षा की एक नई तस्वीर उभरती देखी, उसका एक नया स्वरूप, नया अर्थ उभरते देखा। हमें लगा कि बुनियादी शिक्षा एक ऐसी शिक्षा है, जिसे हम ''देशकाल और पात्र की संयुक्त शिक्षा'' या प्राकृतिक परिवेश, सामाजिक परिवेश तथा विद्यार्थी की 'इंटीग्रेटेड' शिक्षा का नाम दे सकते हैं। इस दृष्टि से जब हाथ के हुनर को, दस्तकारी या उद्यम को भी हम परखेंगे तो हमें समझ में आएगा कि उद्यम एक त्रिवेणी संगम है, जहां प्राकृतिक परिवेश से तो कच्चामाल पहुंचता है, उद्यमी व्यक्ति का श्रम तथा दिमाग जिसमें लगता है और जो वस्तु बनती है वह समाजोपयोगी होती है। इस प्रकार बुनियादी स्कूल में जो उद्यम है वह प्रकृति, व्यक्ति एवं समाज इन तीनों का मिलन केंद्र बन जाता है। तो बुनियादी शिक्षा का जो एक नया अर्थ हमारी समझ में आया, वह यह

था कि बुनियादी शिक्षा विद्यार्थी एवं उसके सामाजिक, आर्थिक एवं प्राकृतिक परिवेश की अविभक्त अथवा एकीकृत अथवा इंटीग्रेटेड शिक्षा है। इसके विपरीत हमारे आज के औपचारिक स्कूल विद्यार्थी को उसके परिवेश से काट करके जो शिक्षा देते हैं, उसी का नतीजा है कि जैसे–जैसे व्यक्ति या मनुष्य स्कूलित होता जाता है वैसे–वैसे सामाजिक परिवेश भ्रष्ट होता जाता है और पर्यावरण प्रदूषित होता जाता है।

इसके अलावा जो बात हमने इस प्रयोग से समझी वह यह थी कि बुनियादी शिक्षा तो शिक्षा की विषयवस्तु या उसके पाठ्यक्रम का स्थानीय स्थितियों के साथ अनुकूलीकरण अथवा अनेकीकरण अथवा उसका विविधीकरण है ताकि बुनियादी शिक्षा का विद्यार्थी अपने स्थानीय परिवेश में अच्छी तरह जम सके और उसे अपने परिवेश से उखड़कर निर्यातित नहीं होना पड़े।

इसके बाद एक प्रयोग जो मैंने किया वह इस प्रकार था। मेरे स्कूल में विद्यार्थी काफी दूर–दूर से पैदल आते थे और पैदल ही घर लौटते थे। कई विद्यार्थियों को स्कूल पहुंचने में देर हो जाती थी। इस पर मैंने एक प्रयोग शुरू किया। स्कूल का कार्यारंभ प्रार्थना सभा से होता था। एक दिन मैंने प्रार्थना सभा में यह प्रश्न पूछा कि पहली कक्षा में कितने विद्यार्थी देर से आए। इसी प्रकार, हर कक्षा के बारे में पूछा। अब मैंने कहा कि पहली कक्षा में जो विद्यार्थी देर से आए हैं उन पर प्रति विद्यार्थी एक पैसा, दूसरी कक्षा में देर से आनेवाले पर प्रति विद्यार्थी दो पैसा और इसी प्रकार बढ़ाते–बढ़ाते जो सातवीं कक्षा के विद्यार्थी देर से आए हैं उन पर प्रत्येक पर सात पैसा, इस हिसाब से जुर्माना मैं स्वयं प्रतिदिन दूंगा और यह पैसा छात्रकोष में जमा होगा। आज तो पैसा छोड़ कर दस पैसे की भी कोई वकत नहीं है, पर उस जमाने में एक पैसे की भी वकत थी। तो चार–पांच आने मेरे रोज खरच होने लगे। पर परिणाम यह हुआ कि धीरे–धीरे विद्यार्थियों का देर से आना बहुत कम पड़ गया और ठोस वास्तविक कारणों से ही कोई विद्यार्थी देर से पहुंचता। पर परिणाम इतना ही नहीं हुआ। धीरे–धीरे विद्यार्थी प्रार्थना सभा में खड़े होकर यों बोलने लगे कि जुर्माने के पैसे वे खुद ही भरेंगे, और मुझे नहीं भरने देंगे। इस पर मेरा जवाब यह था कि तुम यदि जुर्माना भरोगे तो पैसा तो तुम्हारे पिताजी से आएगा। तो इतना सा जुर्माना भरने के लिए तुम मुझे ही अपना पिता नहीं मान सकते? क्या किसी अर्थ में तुम मेरी संतान भी नहीं हो।

धीरे–धीरे मेरी समझ में यह बात गहराई तक बैठती गई कि शिक्षा हमें भाषा, गणित, भूगोल, इतिहास, खेती या कताई आदि विषयों की नहीं करनी है, शिक्षा तो हमें अपने विद्यार्थियों में बसे हुए इंसानों की करनी है। इंसान को विश्वनीय, नेक, स्नेही, सेवाभावी, स्वस्थ, संयमी, स्वावलंबी बनाना शिक्षा का मूल काम तथा मूल दायित्व है। भाषा, भूगोल, गणित, विज्ञान इतिहास तथा हाथ का हुनर सिखा देना शिक्षा को मूल काम नहीं है। इसलिए कम से कम प्रारंभिक शिक्षा में तो हमें विषय–शिक्षकों से छुट्टी पा लेनी चाहिए और कक्षा शिक्षकों से काम लेना चाहिए। मैं भाषा शिक्षक, या गणित शिक्षक, या विज्ञान शिक्षक या कताई शिक्षक या भूगोल या इतिहास शिक्षक नहीं हूं बल्कि मैं पहली या दूसरी या तीसरी या चौथी या सातवीं कक्षा के छात्रों का शिक्षक हूं, ऐसा परिचय शिक्षकों का होना चाहिए। बेसिक स्कूल कोई हाई स्कूल, या कॉलेज या यूनिवर्सिटी तो नहीं जहां अलग–अलग विषयों के निष्णात विशेषज्ञ ही अपना–अपना विषय पढ़ावें। बेसिक स्कूल तो हर नागरिक की न्यूनतम आवश्यक शिक्षा की खुराक मात्र है। इसमें विषयविषेज्ञता के आधार पर शिक्षक क्यों नियुक्त हों? एक शिक्षक एक कक्षा को

सभी विषय क्यों नहीं पढ़ा सकता है या सिखा सकता है? इस प्रश्न पर हमने सोचा, तो हमें यह बात समझ में आई कि शिक्षक तथा शिष्य के बीच व्यक्तिगत लगाव या सगेपन का, दोनों के बीच पारस्परिक जिम्मेदारी का रिश्ता गहरा कायम हुए बिना न तो शिक्षक विद्यार्थियों के लिए एक आदर्श प्रेरणा–स्रोत बनने का प्रयत्न करेगा और न विद्यार्थियों में अपने आचरण द्वारा अपने शिक्षक की इज्जत बचाने की प्रेरणा जागेगी। शिक्षकों को केवल तनख्व्वाह ही नहीं कमानी है, शिक्षकों को एक नई प्रकार की संतान यानी शिष्य कमाने हैं। मैं अमुक का शिष्य हूं और मैं अमुक का गुरु हूं ऐसा लगाव, ऐसा सगापन, ऐसा दायित्वपूर्ण रागात्मक संबंध कम से कम प्राथमिक स्कूलों में तो पैदा होना ही चाहिए और तभी स्वामी विवेकानंद का मैंन मेकिंग एज्यूकेशन का सपना पूरा हो सकता है। ऐसा सोच समझ कर मैंने अपने स्कूल में विषयगत शिक्षक प्रथा को समाप्त किया और कक्षागत शिक्षक प्रथा शुरू की। मैं यहीं तक नहीं रुका। मैंने यह प्रथा भी शुरू की कि इस वर्ष जो शिक्षक पहली कक्षा को पढ़ा रहे हैं, अगले वर्ष उसी कक्षा के विद्यार्थियों के साथ रहें और उन्हें दूसरी कक्षा में पढ़ावें। इस प्रकार शिक्षक एक ही छात्रमंडली के साथ जितनी कक्षाओं तक जा सके, जरूर जाए। मेरा कहना यह है कि यदि कक्षा के विद्यार्थी पढ़ते–पढ़ते आगे की मंजिल पर चढ़ सकते हैं, तो कक्षा का शिक्षक भी पढ़ाते–पढ़ाते आगे की मंजिल पर क्यों नहीं चढ़ सकता। मैं इस बात का कायल बन गया था कि विद्यार्थियों को अपने शिक्षक से और शिक्षक को अपने विद्यार्थियों से जीवन भर के स्थाई अपनेपन के लगाव के साथ बंध जाना चाहिए। जैसे विद्यार्थी कहता है कि मैं अमुक बाप का बेटा हूं वैसे ही विद्यार्थी को यह भी कहने का अवसर तथा गर्व होना चाहिए कि मैं अमुक गुरु या शिक्षक का शिष्य या छात्र हूं। ऐसी व्यवस्था शिक्षा की जब तक नहीं होगी, शिक्षकों की गैरजिम्मेदारी तथा लापरवाही अपने शिक्षण कार्य में नहीं मिटेगी। जैसे माता–पिता का तबादला नहीं किया जा सकता है, वैसे ही शिक्षक का तबादला भी नहीं हो सकता है। शिक्षण और सरकारी कर्मचारीपन बिल्कुल अलग चीजें हैं। शिक्षक होना तो रिश्तेदार बनना है। जैसे रिश्तेदारी स्थाई होती है वैसी ही शिक्षक छात्र संबंध जीवनभर के लिए स्थाई होना चाहिए। इस सूझबूझ से मेरे स्कूल में जो शिक्षण कार्य हुआ, उससे मेरे स्कूल के छात्रों में एक चरित्र पैदा हुआ, जिसे आसपास के ग्रामीण जीवन में एक नई भावना, एक नई ताजगी पैदा हुई। सबसे मुख्य बात यह हुई कि जो भी शिक्षक मेरे साथ काम करके गए उन्होंने माना कि मेरे स्कूल में उनको शिक्षा में एक नई दृष्टि मिली, जो उन्हें किसी भी ट्रेनिंग स्कूल से नहीं मिल सकती थी। हमें जो दृष्टि मिली वह यह थी कि बुनियादी शिक्षा वह शिक्षा है, जिसे हम छात्र एवं शिक्षक की संयुक्त शिक्षा कह सकते हैं। इस प्रकार हमें बुनियादी शिक्षा का एक नया मतलब समझ मे आया। मैं यह मानने लगा कि विद्यार्थी की शिक्षा करने की प्रक्रिया से यदि गुरु की शिक्षा आगे नहीं बढ़ती तो वह शिक्षा नहीं है और वह बुनियादी शिक्षा तो हरगिज भी नहीं है। उदयपुर की स्थानीय लोकवाणी में कृपया ये पंक्तियां सुनिए–

यदि गुरु गुरु है शिष्य रो, तो शिष्य है गुरु रो गुरु।

पारस्परिक शिष्यत्व सूं व्है, उभय री शिक्षा शुरू।

शेष अगले अंक में ...

दयाल चंद्र सोनी : विद्या भवन बुनियादी मदरसे के प्रथम प्रधानाध्यापक (1941) एवं प्रमुख गांधीवादी विचारक।